सदनों की कम होती बैठकें

हाल के वर्षों में विधान सभाओं की बैठकें क्रमशः कम होती जा रही हैं। डेटा बताते हैं कि पिछले एक दशक में प्रतिवर्ष औसतन तीस बैठकें ही हुई हैं। लोकतंत्र का यह अवमूल्यन चैंकाने वाला है। इतना ही नहीं; अमेरिका, यू.के., जापान, कनाडा और जर्मनी की तुलना में भारतीय लोकसभा की बैठकों की संख्या भी बहुत कम है। इसके प्रभाव -

- सांसदों और विधायकों की इतनी कम बैठकों का मतलब है कि विधायिका, कानूनों और शासन के मुद्दों पर बहस करने के लिए पर्याप्त समय नहीं दे रही है।

  ज्ञातव्य हो कि पूर्व मुख्य न्यायाधीश एन वी रमन्ना ने भी कुछ समय पहले बनने वाले कानूनों के खराब मसौदों पर प्रकाश डाला था।

- कम समय में बनने वाले कानूनों के चलते न्यायालयों में वे अक्सर व्याख्या और मुकदमेबाजी पर विवाद का कारण बनते हैं। न्यायालय में मामले बढ़ते हैं।

- केंद्र या राज्य स्तर की कार्यपालिका, विधायिका की मुस्तैदी से सीमा में रहती है। बैठकों की कमी से वे भी अब अप्रतिबंधित महसूस कर रही हैं। दबाव के अभाव में 17वीं लोकसभा में केवल 13% विधेयक ही स्थायी समितियों को भेजे गए हैं, जबकि 16वीं लोकसभा में इनकी संख्या 27% के लगभग, और 15वीं में 60% से अधिक रही है।

इस कमी को दूर करने के लिए सदनों की बैठकों के लिए कोई निश्चित नियम बनाया जाना चाहिए। इन बैठकों में प्रत्येक दल के अधिकांश विधायकों या सांसदों की उपस्थिति को अनिवार्य बनाया जाना चाहिए।

यदि विधायिकाएं अभी की तरह ही शासन में महत्वहीन बनी रहीं, तो लोकतंत्र की गुणवत्ता में गिरावट होनी ही है। इस पर शीघ्र ही विचार किया जाना चाहिए।

'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित संपादकीय पर आधारित। 18 फरवरी, 2022